घनानन्द की प्रेमानुभूति

घनानन्द हिन्दी के सर्वोत्कृष्ट स्वच्छन्द प्रेमी कवि हैं। इनकी कविता प्रेमोद्‌गारों की अक्षय निधि है और हिन्दी-काव्य की चिर स्थायी सम्पत्ति है। इनकी प्रेम-व्यंजना में इतनी आकुलता, इतनी व्यथा एवं इतनी पीड़ा है कि कठोर से कठोर श्रोता एवं पाठक भी द्रवित हो जाते हैं और उसमें संयोग-सुख की इतनी मादकता एवं उल्लास-भावना भरी हुई है कि सहृदयों को आनन्द-विभोर कर देती है। इतना ही नहीं, घनानन्द ने प्रेम का तात्त्विक विवेचन करते हुए उसकी महत्ता का भी प्रतिपादन किया है और प्रेम-मार्ग के कष्टों, बाधाओं, संकटों आदि की ओर भी संकेत किये हैं। इनकी प्रेमानुभूति में आत्मानुभूति का सर्वाधिक योग है। इसी कारण उसमें अधिक नवीनता, आकर्षण एवं आलौकिकता के दर्शन होते हैं। सुविधा की दृष्टि से घनानन्द की प्रेमानुभूति को सात शीर्षकों में विभक्त कर सकते हैं—**(1) प्रेम की लौकिक महत्ता, (2) प्रेम-मार्ग की निश्छलता, (3) प्रेम की नैसर्गिकता, (4) प्रेम की कष्ट-सहिष्णुता, (5) सौन्दर्य-प्रियता, (6) संभोगशीलता और (7) विरहातुरता।**

(1) लौकिक महत्ता—घनानन्द के प्रेम का मूलाधार सुजान वेश्या थी जिसके प्रति घनानन्द का तीव्रानुराग था। उनका यही लौकिक प्रेम उस वेश्या के कपट, छल एवं निष्ठुर व्यवहार के कारण अलौकिकता में परिणत हो गया था, परन्तु घनानन्द के हृदय से उस लौकिक प्रेम की चसक, वासना की ललक एवं रूप की चटक मिटी नहीं थी। इतना अवश्य है कि वे लौकिक वेश्या के प्रेम को भगवान् कृष्ण के प्रेम में परिणत करने में पूर्ण सफल रहे और उनका यह लौकिक प्रेम अलौकिक प्रेम के रूप में ही अभिव्यक्त हुआ, परन्तु उस अलौकिकता का मूलाधार लौकिक प्रेम ही है, लौकिक वासना नहीं है, लौकिक ललक ही है, जिसने घनानन्द को 'महा नेही' बना दिया था, 'प्रेम के महोदधि' में निमग्न कर दिया था, 'चाह के रंग' में भिगो दिया था, 'जोग-वियोग की रीति में कोविद' बना दिया था और 'बिछुरै मिले-प्रीतम सांति न मानै' की भावना वाला कर दिया था।[1] इसीलिए घनानन्द के इस उपालम्भ में वही लौकिक प्रेम हिलोरे ले रहा है—

क्यों हँसि हेरि हर्‌यो हियरा अरु क्यों हित कै चित चाह बढ़ाई।
काहे को बोलि सुधा सने बैननि चैननि मैन-निसैन चढ़ाई।।
सो सुधि मो हिय मैं घनआनन्द सालति क्यों हू कढ़ै न कढ़ाई।
मीत सुजान अनीत की पाटी इतै पै न जानिए कौने पढ़ाई।।

(2) **निश्छलता**—घनानन्द सच्चे प्रेमी थे। भले ही उनके प्रिय ने उनके साथ विश्वासघात् किया, उन्हें दगा दी और उनका साथ नहीं दिया, किन्तु वे एक निश्चल प्रेमी थे और प्रेम के कक्ष में निश्छलता एवं निष्कपटता को ही अत्यधिक महत्त्व देते थे। उनकी सफलता का एकमात्र कारण ही यह है कि वे अपने प्रेम-मार्ग पर दृढ़ता के साथ बढ़ते रहे, उनके हृदय में तनिक भी छल-कपट न था और वे प्रेम-मार्ग में सयानपना पसन्द नहीं करते थे। वे तो प्रेम के मार्ग को अत्यन्त सीधा मानते थे, जिस पर वे ही चल सकते हैं, जो सच्चे हैं, निश्छल हैं और तनिक भी कपट-व्यवहार नहीं जानते। अपनी इसी निश्छलता की ओर संकेत करते हुए आपने लिखा—

अति सूधो सनेह कौ मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपुनपौ झिझकैं कपटी जे निसाँक नहीं।।
घनआनन्द प्यारे सुजान सुनौ इत एक तें दूसरौ आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हो लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।।

(3) **नैसर्गिकता**—घनानन्द के प्रेम में आडम्बर एवं कृत्रिमता के लिए तनिक भी स्थान नहीं था, क्योंकि घनानन्द स्वाभाविक प्रेम के पुजारी थे, स्वच्छन्दता के भक्त थे और अपनी तरंग में आकर प्रेम का निरूपण करते थे। ऐसे मनमौजी कवि को किसी बादशाह की इच्छा-तुष्टि की भला क्यों चिन्ता होने लगी ? इसीलिए घनानन्द ने अपने युग की रूढ़ियों को तोड़कर कविता लिखी, आपने युग के स्वर में स्वर न मिलाकर प्रेम की सर्वथा स्वतन्त्र व्यंजना की और तत्कालीन प्रेम-व्यंजक परिपाटी से सर्वथा निरपेक्ष होकर स्वानुभूत प्रेम की अभिव्यक्ति की। वे जानते थे कि उनके प्रिय के अनेक प्रेमी हो सकते हैं, परन्तु घनान्द के तो रोम-रोम में वही प्रिय बसा हुआ है। भले ही उनका प्रिय उन्हें चाहे या न चाहे, परन्तु उनके हृदय में तो विषम प्रीति की रीति बसी हुई है। अपनी इसी नैसर्गिक प्रेम की व्यंजना करते हुए तथा चन्द्रमा और चकोर के नैसर्गिक प्रेम से अपनी तुलना करते हुए घनानन्द ने ठीक ही कहा है—

चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै अनन्दघन,
प्रीति-रीति विषम सु रोम-रोम रमी है।
मोहिं तुम एक, तुम्हें मो सम अनेक आहिं,
कहा कछू चंदहिं चकोरन की कमी है।।

(4) **कष्ट-सहिष्णुता**—घनानन्द सचमुच ही प्रेम के दीवाने थे। वे प्रेम-मार्ग में सभी प्रकार के कष्टों को सहन करने के लिए तैयार थे। यदि उनका प्रिय अपने प्रेमी की चिन्ता न करके निष्ठुरता, कठोरता एवं निर्दयता का ही व्यापार कर रहा था, तो घनानन्द अपने निष्ठुर एवं निर्दय प्रिय के हृदय में दया उत्पन्न करने के लिए **अपने को आशा की रस्सी से बाँधकर भरोसे की शिला छाती पर रखकर अपने प्रेम के प्रण रूपी सिन्धु में डूबने को तैयार थे, हृदय को दुःख के दावानल में जलाकर रोम-रोम को त्रास की लपटों में जला सकते थे, साहसपूर्वक अपने सिर को आरे से चिरवा सकते थे और भी जो लाखों प्रकार की यातनायें सहनी पड़ें उन्हें भी सहने को तैयार थे।** उनकी इस कष्ट-सहिष्णुता को धन्य है, जो प्रेम के

प्रण को पूरा करने के लिए सब-कुछ सहने की शक्ति दे रही थी। इसीलिए तो घनानन्द ने लिखा—

आसा-गुन बाँधि कै भरोसे-सिल धरि छाती,
पूरे प्रन-सिंधु मैं न बूढ़त सकाय हौं।
दीह दुख-दव हिय जारि उर अन्तर,
निरन्तर यौं रोम-रोम त्रासनि तचाय हौं।।
लाख लाख भाँतिन की, दुसह दसानि जानि,
साहस सम्हारि सिर आरे लौं चराय हौं।
ऐसे घनआनन्द गही है टेक मन माँहि,
एरे निरदई तोहिं दया उपजाए हौं।।

(5) सौन्दर्यप्रियता—घनानन्द के प्रेम का मूल कारण उनकी प्रेयसी सुजान का अनिंद्य सौन्दर्य था, जो कवि घनानन्द के रोम-रोम में बसा हुआ था, क्योंकि वे उसकी सहज सुकुमारता, स्वभाविक मधुरता एवं प्राकृतिक सुन्दरता को देखकर ही उसके सच्चे प्रेमी बने थे। इसीलिए घनानन्द के हृदय में प्रेयसी सुजान की 'तिरछी चितौनि', 'चंवल विसाल नैन', 'धूमरे कटाक्षि', 'रसीली हँसी', 'बड़ी-बड़ी अँखियाँ', 'चीकने चिहुर', 'जोबन-गरूर-गरुवाई', 'रस-रासि-निकाई', 'नवजोबन की सुथराई', 'नेह-ओपी-अरुनाई', 'रूप-निकाई' आदि समांई हुई थी और इस कारण उनके हृदय में प्रिय के सौन्दर्य का अथाह सागर हिलोरें लेता रहता था। उन्होंने अपनी प्राणप्रिय अलबेली सुजान के इसी अनिंद्य सौन्दर्य का स्थान-स्थान पर उल्लेख किया है। एक बार तीव्र और वर्ण वाली सुजान से नीले रंग की साड़ी पहन ली थी। कवि घनानन्द के इस रंग-वैषस्य द्वारा छलकते हुए सौन्दर्य-सुधा-सागर का कैसा अनुपम चित्र अंकित किया है—

स्याम घटा लिपटी थिर बीज कि सोहै अमावस अंक उज्यारी।
धूम के पुंज मैं ज्वाल की माल-सी पै दृग-सीतलता-सुखकारी।।
कै छकि छायौ सिंगार निहारि सुजान-प्रिया-तन-दीपति प्यारी।
कैसी फबी घनआनन्द चोपनि सों पहिरी चुनि साँवरी सारी।।

घनानन्द की यह लौकिक सौन्दर्यमयी भावना नित्य नई-नई भंगिमाओं को ग्रहण करती चली गई है, क्योंकि उन्होंने अपनी अनिंद्य सुन्दरी के रूप-सौन्दर्य में क्षण-क्षण पर बदलते हुए सौन्दर्य के भी दर्शन किए थे। इसी कारण घनानन्द ने लिखा—

रावरे रूप की रीति अनूप नयो नयो लागत ज्यौं ज्यों निहारियै।
त्यौं इन आँखिन बानि अनोखी अघानि कहूँ नहिं आन तिहारियै।।
एक ही जीव हुतौ सु तौ वार्‌यो सुजान संकोच औ सोच सहारियै।
रोकी रहै न, दहै घनआनन्द बावरी रीझ के हाथनि हारियै।।

(6) संभोगशीलता—घनानन्द की प्रेमानुभूति में शृंगार के संयोग या संभोग का हर्ष, उल्लास एवं सुख भी भरा हुआ है। यद्यपि घनानन्द ने थोड़े से छन्दों में ही प्रेम-शृंगार के संयोग पक्ष का निरूपण किया है, जिसमें संभोग सुख की उमंग, मिलन का उल्लास, आनन्द-क्रीड़ा की आतुरता, रति-सुख का उत्साह, सामीप्य लाभ का हर्ष तथा संसर्ग की लालसा का उद्दाम वेग भरा हुआ है। घनानन्द ने इसीलिए संयोग-सुख के आनन्द से

प्रफुल्लित रोम-रोम का तथा अंग-अंग से फूटते हुए हर्षोल्लास का कैसा सजीव चित्रण किया है—

ललित उमंग बेली आलबाल अंतर ते,
आनँद के घन सींची रोम रोम है बढ़ी।
आगम-उमाह-चाह छायौ सू उछाह रंग,
अंग अंग फूलनि दुकूलनि परै कढ़ी।।
बोलत बधाई दौरि दौरि के छबीले दृग,
दसा सुभ सगुनौती नीकें इन है पढ़ी।
कंचुकी तरकि मिले सरकि उरोज, भुज,
फरकि सुजान चोप-चुहल महा बढ़ी।।

(7) **विरहाकुलता**—घनानन्द के प्रेम में जहाँ संयोग का हर्ष-उल्लास यत्किंचित् दृष्टिगोचर होता है, वहाँ विरह का अथाह सागर हिलोरें लेता हुआ दिखाई देता है। देखा जाए तो घनानन्द विरह के ही कवि हैं, क्योंकि उन्होंने प्रेम के मिलन-पक्ष की अपेक्षा विरह एवं वियोग-पक्ष का ही अधिक आतुरता, तत्परता, तल्लीनता एवं तीव्रता के साथ निरूपण किया है। सुजान का यह विरह घनानन्द के लिए वरदान सिद्ध हुआ है और घनानन्द ने भी अपनी विरहाकुलता का निरूपण करके सुजान एवं उसके प्रति प्रेम को अमर बना दिया है। घनानन्द की यह विरहाकुलता ही उनके सच्चे प्रेम की कसौटी है, क्योंकि इसी ने घनानन्द के प्रेम को अमरता प्रदान की है। इसी कारण घनानन्द के चिरन्तन विरह-वेदना, अखण्ड तृषातुरता एवं अक्षय विरहाकुलता का निरूपण किया है। यथा—

रैन दिना घुटिबौं करैं प्रान झरैं अँखियाँ दुखियाँ झरना सी।
प्रीतम की सुधि अंतर मैं कसकै सखि ज्यों पँसरीन मैं गाँसी।।
चौचँदचार चवाइन के चहुँ ओर मचैं बिरचैं करि हाँसी।
यौं मरियै भरियै कहि क्यों सु परौ जनि कोऊ सनेह की फाँसी।।

सारांश यह है कि घनानन्द के काव्य की मूल संवेदना ही प्रेम है और उसी से सारा काव्य स्पंदित हो रहा है। उनके इस प्रेम में स्वानुभूति की तीव्रता भरी हुई है और वह उनके व्यक्तित्व के संस्पर्श से और भी अधिक दिव्य एवं अलौकिक बन गयी है। घनानन्द के इस प्रेम में नवीनता है, तीव्रता है, सरसता है, मार्मिकता है और सबसे अधिक सहृदय-संवेद्यता है। घनानन्द का यह प्रेम आत्मानुभूति का ज्वलंत प्रतीक है और इसी कारण इसमें नैसर्गिकता है, उदात्तता है, व्यापकता है, अनन्यता है, दिव्यता है और गहनता है। यह कवि की अनुभूतियों का भंडार है और इसी कारण इस प्रेम में सर्वाधिक एकनिष्ठा, आत्मसमर्पण, सर्वस्व त्याग एवं शाश्वत मिलन-विरह की स्थिति के दर्शन होते हैं। निस्सन्देह, घनानन्द की प्रेमानुभूति अन्तर स्पर्श करने वाली है और इसमें जीवनगत तथ्य एवं भावगत सत्य अन्तर्निहित है। यद्यपि यह लौकिक प्रेम की अभिव्यंजना से ओतप्रोत है, तथापि यह लौकिक प्रेम ही अलौकिक प्रेम के परमधाम तक भी पहुँच गया है, क्योंकि कवि की यह **'इश्क मजाजी' धीरे-धीरे 'इश्क हकीकी' तक पहुँची हुई दृष्टिगोचर होती है।** इसी कारण घनानन्द को लौकिक एवं अलौकिक प्रेम का सच्चा कवि कहना सर्वथा समीचीन ज्ञात होता है। आचार्य शांडिल्य ने प्रेम की परिभाषा करते हुए लिखा है कि संयोग ने भी वियोग-सा बने रहने की प्रवृत्ति को प्रेम कहते हैं।[1] कहने की

आवश्यकता नहीं कि घनानन्द की प्रेमानुभूति उक्त परिभाषा को पूर्णतया चरितार्थ करती है, क्योंकि घनानन्द के संयोग में भी वियोग भरा हुआ है। इनका प्रेम स्थूल नहीं, अपितु सूक्ष्म है। उसमें अश्लीलता एवं काम-वासना नहीं है, अपितु दिव्यता एवं पवित्रता है, क्योंकि घनानन्द ने सर्वत्र शारीरिक अंगों की अपेक्षा भावना द्वारा प्रिय का सान्निध्य-प्राप्ति की आकांक्षा प्रकट की है। इसी कारण घनानन्द की प्रेमानुभूति अनिर्वचनीय है, वह प्रेमी की मूक पुकार है और पूर्णतया अनुभव-गम्य है।